Anusandhanvallari
Vol 2025, No.1
September 2025
ISSN 2229-3388

वैदिक कालीन संस्कृति एवं समाजः एक परिचय

Dr. Salini
Associate Professor PG & Research Department of Hindi Government College for Women
Pincode – 695 014
Affiliated to University of Kerala
Email: Salusasidhar 651@gmail. Com

संसार की सबसे प्राचीन एवं सत्य विधाओं सहित जीवन के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डालनेवाली ईश्वर प्रदत्त दिव्य ज्ञान को 'वेद' कहलाते है। वेद में पूरे संसार की धर्म, संस्कृति, शिक्षा, सभ्यता या संस्कृति का मूल तत्व है। वेदों के अनुरूप ही सभी कार्य, व्यवहार या आचारण आदि को मानवीय संस्कृति कहलाया है। इसके विपरीत आचरण करे तो उसे 'पशु संज्ञक काल' कार्य कहते है। वेदों मनुष्य जीवन के सभी कार्यों पर प्रकाश डाला है। वेदों के आधार पर ही हमारी ऋषि लोगों ने १६ संस्कारों की रचना की। जैसे - बालक-बालिका के जन्म के सम्बन्ध, अच्छे संतानों केलिए माता-पिता ब्रहमचर्य को स्वीकारते है। वैदिक संस्कारों से संतान को सुभूषित करने केलिए यहां गुरुकुल शिक्षा पद्धति का विकास एवं प्रचलन हुआ। गुरुकुल शिक्षा पद्धति की एक विशेषता जो है कि वैदिक या आर्ष गुरुकुलों में आर्ष व्याकरण, चारों वेदों और अन्य शास्त्रों को ज्ञानियाँ द्वारा अध्ययन करते है। इसकी भाषा संस्कृत है, जिसमें हमारा प्राचीन साहित्य विद्यमान है। ब्रह्मचारी एवं विद्यार्थी लोगों ने गायत्री मंत्रों का उच्चारण करके वेदोपदेश का अध्ययन करते है। अगर वह लोग गुरु या शिक्षक बने तो वह प्रातःकाल में या संध्या समय में ईश्वरोपासना या अन्य चार यज्ञों को वैदिक एवं वैज्ञानिक विधि के अनुसार करते है। इसमें किसी

ANUSANDHANVALLARI
ISSN: 2229-3388

Anusandhanvallari
Vol 2025, No.1
September 2025
ISSN 2229-3388

प्रकार का अंधविश्वास नहीं होता। यहां केवल आत्मा को परमात्मा का संयुक्त करना ही इस उपासना का प्रमुख लक्ष्य ता। इस उपासना को सफल करने केलिए संध्या-समय में ध्यान की क्रिया को अधिक महत्व दे दिया है। इसके अलावा पांच प्रकार के प्रमुख संस्कार हैं इसलिए इसे 'पंचमहायज्ञ' कहलाते है। इसे बालक और ऊपर बालिका ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी अथवा विद्यार्थी और विद्यार्थिनी लोग सुसंस्कृत बन सकते है। इसके विपरीत बालक और बालिकाओं के जीवन को हम संस्मृति रहित जीवन का सन्देश देता है। स्नातक बनने तक शिष्य एवं शिष्या वैदिक संस्कारों से परिचित होकर अभ्यस्त हो जाते हैं। हम इसे संस्कारित एवं भारतीय वैदिक संस्कृति के अनुरूप युवा कह सकते है। इन पंचमहायज्ञों के संस्कार होती है। साथ ही यह युवक साचरी, धर्मात्मा, साहसी, निर्भय, वीर सत्यानुरागी, ईश्वर भक्त, गुरुभक्त, मातृ-पितृ-आचार्य-भक्त, देश भक्त, समाज-सेवक, परोपकारी एक सच्चे शिक्षक भी होते है। पुराने-ज़माने गुरुकुल में अध्ययन होते हैं। हर एक विद्यार्थी अपने माता-पिता एवं परिवार को छोड़कर गुरुकुल में जाते है और शिक्षा का अध्ययन करते है। आजकल के विद्यार्थियों की तरह उसका विचार कुप्रभावित कर अपना दास नहीं बनते। इस प्रकार आधुनिक विषयों का भी साथ-साथ अध्ययन करने से गुरुकुल का विद्यार्थी आज के समय की आवश्यकता के अनुरूप सभी गुणों से युक्त व अवगुण-शून्य बलवान व मेधावी युवा बनाया जा सकता है। ऐसा युवक ही भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि होता है। उदहारण के रूप में राम, कृष्ण, पाणिनी, यास्क, पतंजलि, कपिल, आदि को हम प्रस्तुत कर सकते है। यह

तो भारतीय संस्कृति के आदर्श थे। इसका अध्ययन और कार्य भारतीय वैदिक सांस्कृतिक के मार्गदर्शक हैं।

यह तो संस्कृति का ही अंग है। वैदिक संस्कृति का मुख्या आधार है- चार आश्रम। वे इस प्रकार के हैं - (१) ब्रह्मचर्याश्रम, (२) गृहस्थाश्रम, (३) वानप्रस्थाश्रम और (४) सन्यासाश्रम आदि। ब्रह्मचर्याश्रम में गुरु के सान्निध्य में रहकर सभी विधाओं का अर्जन की है। गृहस्थाश्रम में गृहस्थ जीवन और उसके कर्तव्यों को वेदानुसार निभाते है। वानप्रस्थाश्रम में परिवार से दूर रहकर वाम या जंगल या किसी स्थान पर आश्रम में पत्नी सहित या अकेले रहकर अध्ययन करते है। संयासाहराम में देश और समाज के कल्याण केलिए अपने ज्ञान व योग्यता के बिना किसी लोभ व आर्थिक प्रयोजन के प्रचार एवं प्रसार करने केलिए होते हैं। संयासाहराम में रहते हुए अकेले रहकर वेदों का अध्ययन, अध्यापन, चिंतन, मनन, संध्या-उपासना-योगाभ्यास आदि संलग्न रहता है। इस सभी चार आश्रमों के कर्तव्य और व्यवहार निर्धारित है। इनका पालन या आचरण ही संस्कृति है। साधारण रूप में सीदा-साधा धोती, कुरता धारण करके शुद्ध भोजन करके अपनी लक्ष्य की प्राप्ति में एकनिष्ठ संलग्न रहना ही वैदिक और भारतीय संस्कृति है।

संस्कृति वही है जो वेदों से प्रेषित एवं वैदिक मूल्यों के अनुकूल एवं अनुरूप उसके पूरक है। देशकाल या वातावरण के अनुसार हमारे जीवन, कार्य व्यव्हार और प्रवृत्ति में न्यूनाधिक हो सकता है। किन्तु वह वेदाचरण के अनुकूल होना चाहिए विपरीत नहीं। वह आचरण या प्रवृत्ति, व्यवहार या जीवन शैली संस्कृति शब्द से ग्रहण की जा सकती है।

ईश्वर के कृपा से हमें पाँच ज्ञानेन्द्रियां मिली हैं। इसके माध्यम से हम देखकर, सुनकर, शूँघकर, चखकर व स्पर्ष द्वारा ज्ञान प्राप्त करते है। सोलह संस्कारों में जो मन्त्र बोले जाते है, तो उनका अपना महत्व है। आज दुर्देव से संस्कृत और संस्कृति हमसे दूर चले गए हैं। हम लोग इतने अयोग्य है कि हमें ईश्वर कणी जो शब्द या भाषा हमारे मातृभाषा से भो बढ़कर है, उसे हम जानते या समझते भी नही। कहते है कि ईश्वर की एक दान है भाषा। भाषा के बिना मानव पशु के सामान अपने जीवन बिताते है। इसलिए हम मानव संस्कार विहीन बन जाते है। वैदिक काल में ऐसा नहीं था। तब सब देवभाषा संस्कृत जानते थे, वेद मंत्रों के सही अर्थों को पहचानते थे। इसके साथ ही सभी संस्कारों से पूरा लाभ नहीं ले पा रहा है। हम अपने जीवन को सफल करने केलिए वेदों के मंत्रों के सही अर्थों को पहचानते थे। इसके साथ ही सभी संस्कारों में कुछ क्रियायें भी की जाती है। उनका यह ज्ञान आज हमें नहीं है। इसीलिए हम वैदकी संस्कारों से पूरा लाभ नहीं ले पा रहा है। हम अपने जीवन को सफल करने केलिए वेदों के मंत्रों के अर्थ को पूर्ण रूप से जानना होगा और उसके अनुसार आचार या व्यवहार भी करना होगा। वही आचारण ये व्यव्हार भी हमारा धर्म एवं संस्कृति भी है। विद्या एवं शिक्षा से संपन्न कर्म या आचरण का नाम ही संस्कृति है। आधुनिक युग के वेदों के प्रसिद्ध विद्वान महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्य के स्वीकार करके (अपनाते हुए) असत्य को छोड़ने, अविद्या का नाश व् विद्या की वृद्धि करने, अपनी ही उन्नति में तत्पर रहने, सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्म के अनुसार आवहारन करके, संस्कार का उपकार करने को धर्म मानता है। सत्य पर आधारित धर्मानुसार व्यवहार ही सत्य

संस्कृति है अथवा वेदानुसार सत्य का आचरण करना ही धर्म व संस्कृति है। संस्कृत से सम्बन्ध आत्मा से है। आत्मा में ज्ञान होगा और उसके संस्कार जिस प्रकार के होंगे वैसे ही मनुष्य का आचारण होंगे। अतः संस्कारों वेदाध्ययन से आत्मा को शुद्ध एवं पवित्र करके उसे ज्ञान-विज्ञानं वश्रेष्ठ आचरण करना ही संस्कृति है।

वेदों का परिचय

वेद का अर्थ ज्ञान होता है। कहते है कि सृष्टि का सम्पूर्ण ज्ञान वेदों में सुरक्षित है। इसलिए कहा जाता है कि सम्पूर्ण साहित्य और भारतीय दर्शन की आधारशिला है वेद। वेद चार प्रकार के होते है - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद आदि। इसमें सबसे प्राचीन एवं प्रमुख वेद है ऋग्वेद। यह संसार के आति प्राचीन ग्रन्थ है। भारत में भी इसका अधिक महत्व है और भारतीय इसे 'अपौरुषेय' कहते है। अर्थात मानव रचित नहीं है। अतः वेदों के रचनाकार का निर्धारण एक कठिन कार्य है। कुछ लोग इन्हें ईसा के ६००० वर्ष पूर्व के मानते है। प्रत्येक वेद के अपने-अपने ब्रह्मण आरण्यक, उपनिषद् तथा उपवेद भी है। लेकिन यह बात याद रखना है कि एक व्यक्ति द्वारा रचा या लिखा गया ज्ञान नहीं है। अपनी सभ्यता के विकास में अलग-अलग समय में लिखे गए ज्ञान नहीं है। अपनी सभ्यता के विकास में ऋषि लोगों ने मंत्रों को बनाये था, उन्हीं का संकलित रूप है वेद। शुरुवात में वेद लिखित रूप में नहीं थे, उसका यह ज्ञान मैखिक रूप से आगे बढ़ता गया था। गुरु लोग अपने शिष्यों को मौखिक रूप से स्वीकार किया। लम्बे समय तक सनकर या सीखने के कारण वैदिक साहित्य को 'श्रुति' कहा जाता है।

वेदों की रचनाओं का अधिकांश भाग पद्य में लिखते थे। गेय छंदों को 'साम' कहा जाता है। इन तीनों प्रकार के रचना रूपों की क्रमशः अपने में प्रधानता होने के कारण प्रथम तीनों वेदों का नाम ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद आदि है। इन तीनों को 'त्रयी' कहलाते है। चौथा है अथर्ववेद ये अनेक सालों के बाद रचना की है।

उस ज़माने में आर्य अपनी देवी-देवताओं को संतुष्ट करने केलिए दो तरीकों से पूजा करते थे। ये इस प्रकार के हैं - एक तो प्रार्थना एवं स्तुती, दूसरा है यज्ञ। यज्ञ तो उनकी उपासना का मुख्य अंग था। इसलिए ऋग्वेदी आर्यों के धर्म को यज्ञ धर्म कहलाते है। यज्ञों में अन्न, घी, मॉस तथा सुगन्धित सामग्री की आहुति देकर आर्य अपने देवताओं से लम्बी आयु, पुत्र-पौत्र और धन की प्राप्ति तथा शत्रुओं का विनाश करने की प्रार्थना करते थे। उस ज़माने में मंदिरों का निर्माण हुआ था, मूर्तिपूजा का प्रचलन भी नहीं था। ऋग्वेद में एक स्थान पर दस गायें देकर ड़ंद्र की प्रतिमा लेने की उल्लेख है, इससे ज्ञात है कि मूर्तिपूजा ऐसे परिचित थे।

ऋग्वेद में हज़ार खम्भों एवं हज़ार द्वारवाले भवनों तथा पुरो (किलों) का उल्लेख किया था। इससे पता चलता है कि आर्य लोग घर एवं भवन निर्माण कला में निपुण थे। आर्य बड़े-बड़े हमारतों से पठारों का प्रयोग करते थे। सीधा-सादा लोगों के घर बनाने केलिए बांस, लकड़ी आदि बनाते थे। ऋग्वेद में दिया गया इंद्र की स्वर्णमूर्ति का संकेत उस युग में मूर्तिकला की ओर संकेत करता है। संगीत, नृत्य और वाद्यकला में भी आर्यों का बहत ज्ञान था। इसकी जानकारी ऋग्वेद से स्पष्ट होता है। कला के सिवा ज्ञान-विज्ञानं के क्षेत्र में भी ऋग्वेदिक काल में या समय में प्रगति या विकास हुई थी। गणित, चिकित्सा, और ज्योतिष के क्षेत्र में भी

आर्यों ने बहुत जानकारी कर ली थी। ग्रहों के निरीक्षण करके उन लोगों मे यानि आर्यों का नामकरण किया था। रोगशान्ति के लिए हमारी प्रकृति से मिलनेवाली जड़ी-बूटियों का प्रयोग एवं मंत्रों का प्रयोग भी होता था। उस ज़माने में ऋग्वेद के बाद ब्राहमण और आरण्यक आदि साहित्य की रचना हुई। प्रत्येक वेद के अपने-अपने ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् तथा उपवेद भी है। उस समय को वैदिक काल कहलाते है। इस युग में जीनेवाले आर्यों के विकास में नए परिवर्तन आने लगे थे।

वैदिक युग में चार संहितायें थी, वे इस प्रकार के है - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। सबसे पहला जो है ऋग्वेद। यह तो सबसे प्राचीन वेद है। इसकी रचना सबसे पहले हुई थी। ऋग्वेद दस आधारों या पुस्तकों में बंटा है, जिन्हें मंडल कहते है। ऋग्वेद में जो मन्त्र है, इसकी रचना वैदिक ऋषियों द्वारा ही लम्बे समय में की है। ऋग्वेद के मन्त्र वैदिक लोगों की गायें, घोड़ों तथा भोजन जैसे भौतिक उपलब्धियों सम्बन्धी इच्छाओं की एक सरल अभिव्यक्ति थी। कभी-कभी युद्ध में विजय, वर्षा या संतान केलिए प्रार्थनाये आती है। उदाहरण के रूप में अनेक पुत्रों की प्राप्ति केलिए प्रार्थना, परिवार में पुरुष-शिशु की महत्ता का संकेत देती है। ऋग्वेद के रूप में अनेक पुत्रों की प्राप्ति केलिए प्रार्थना, परिवार में पुरुष-शिशु की महत्ता का संकेत देती है। ऋग्वेद के मन्त्र देवताओं जैसेः इंद्र, अग्नि, वरुण और सूर्य भगवान को भी सम्बोधित है। ऋग्वेद में ऐतिहासिक महत्व है, और वैदिक लोगों के धार्मिक विश्वासों, सामाजिक तथा आर्थिक जीवन के बारे में भी जानकारी मिलती है।

मुख्य रूप से यजुर्वेद दो प्रकार के होते हैं - शुक्ल यजुर्वेद और कृष्णा यजुर्वेद आदि। इन दोनों में अंतर हैं। पहला है यजुर्वेद, जहां यजु (इसी से यजुर्वेद नाम निकला है।) नामक एक मन्त्र है, वह दूसरे में यज्ञ से सम्बंधित अनेक अनुष्ठानों, रीति-रिवाज़ को अभिव्यक्त की है। सामवेद की रचनाकाल वैदिक काल में हुई। कहते है कि सामवेद में ऋग्वेद के मंत्रों का संकलन है। अतः इसका साहित्यिक एवं ऐतिहासिक महत्व नहीं है। सामवेद का महत्व संगीतात्मकता एवं लयात्मकता में है। इसमें जादुई शक्ति का प्रभाव मानते है। अथर्ववेद की रचना बहुत सालों के बाद हुई थी। इसमें मुख्य रूप से प्राचीन जादुई मंत्रों का संग्रह है। जिनकी रचना किसी बीमारी के इलाज से लेकर प्रेमपत्र के हृदय को जीतने तक आदि अन्य अनेक इच्छाओं के पूर्ती केलिए की गयी थी। लोगों के मन में इस वेद में कुछ विश्वास था।

वैदिक समाज का परिचय वैदिक साहित्य से मिलता है। वैदिक साहित्य में सर्वप्रथम स्थान ऋग्वेद का है। इसकी रचना आज से लगभग पाँच हज़ार वर्ष के पहले हुई है। वैदिक समाज में आर्य और आर्येतर आदि दो प्रमुख वर्ग थे। आर्यों में ऋषि, ब्राहमण, क्षेत्रीय, वैश्य और शूद्र आदि सम्मिलित है। आगे चलकर ऋषि ब्राह्मणों के वर्ग में मिल गए। आर्थों की शिव, दास, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, आदि जातियां थी। कुछ समय तक इनका आर्यों में संघर्ष भी रहा। समय बीतने पर इनमें से कुछ लोग आर्यों में धूल-मिलकर ब्राह्मण, क्षेत्रीय, वैश्य, या शूद्र बन गए थे और कुछ लोग अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाये रखे।

वर्ण व्यवस्था

समाज में रंग या वर्ण के आधार पर दो वर्ग बनाये थे - आर्य और आर्येतर आदि। इनमें आर्यों का रंग गौरा और आर्येत्तर का रंग काला था। इस प्रकार उस समय वर्णों के आधार पर गोरा और स्याम आदि दो जातियाँ चल पड़ी। किन्तु वर्ण के आधार पर होनेवाले यह भेदभाव अधिक दिन तक नहीं चल पाया। जैसे-तैसे इन दोनों वर्गों में मित्रता स्थापित हुई। यहाँ इन दोनों बर्गों के बीच होनेवाले अंतर भी समाप्त हो गए। ऐसी स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति की जाति उसकी योग्यता और कर्म के अनुसार नियत होने लगी।

कर्मानुसार

वैदिक काल के आरम्भ में आर्यों में किसी जाती का आदमी कोई कर्म या व्यवसाय को अपनाते है। अपने व्यवसाय के आधार पर व्यक्ति ऊँचा या नीच नहीं माना जा सकता था। एक ही परिवार में अनेक व्यवसायों के लोग रहते थे।

जन्मानुसार

धीरे-धीरे सुविधा केलिए एक परिवार में एक ही व्यवसाय के लोगों का रहना अच्छा समझने लगा। लोग बचपन से ही अपने पूर्वजों के कर्म और अचार-विचार को अपनाते थे और उनकी जाती पूर्वजों की जाती के समान हो जाती थी।

जातियों के व्यवसाय

ब्राह्मण सारे समाज का मित्र होता था। उसका कर्तव्य है कि जनता को ज्ञान देकर उसे उन्नति का मार्ग दिखाना। ब्राह्मण सरल एवं विनयी होता था। वैदिक काल के ब्राह्मण खेती और पशुपालन भी करता था। आवश्यकता पड़ने पर अपने

हाथों के मुख्य कर्तव्य राष्ट्र में सुख और शांति प्रदान करना था। ये प्रजा की रक्षा केलिए शस्त्र धारण करके युद्ध में भाग लेते थे। क्षेत्रीय कृषि और पशु-पालन भी करते थे। कृषि, पशु-पालन और व्यापार आदि वैश्यों के प्रमुख व्यवसाय था। व्यापर एवं कई वस्तुओं को बनाने के काम प्रायः वैश्य और शूद्रों का काम था। इसलिए वैश्य और शूद्र आर्थिक दृष्टि में संपन्न थे। शूद्रों में दो वर्ग थे- शिल्पी वर्ग और दास वर्ग। शिल्पी वर्ग जो है अपनी हाथों से बानी हुई वस्तुओं के मूल्य से जीविका चलती है और दास वर्ग ब्राह्मण, क्षेत्रीय तथा वैश्यों की सेवा करते हुए उस परिवार के सदस्य के रूप में अपने भोजन और वस्त्र आदि का प्रबंध करते थे। शूद्र समाज का सबसे अधिक उपयोगी अंग रहा है। वह बड़े स्वामी-भक्त भी थे।

कुटुंब

वैदिककालीन कुटुंब में माता-पिता, पुत्र और पुत्र-वधु भी होते थे। इनमें माता-पिता सबसे ऊंचा होता था। उनका कर्तव्य था कि वे कुटुंब के अन्य लोगों को सदाचारी बनाये उनका पालन-पोषण करे और उनके व्यक्तित्व का विकास होने की व्यवस्था करे। माता-पिता कुटुम्ब में देवता माने जाते थे। उनकी सेवा करना ही पुत्रादि धर्म था।

नारी की स्थिति

उस समय में स्त्रियों को बड़ा आदर करते थे। ''जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'' इसका मतलब है जाने और जन्मभूमि की महिमा स्वर्ग से बढ़कर है। पुत्रवधू या बहू को कुटुम्ब में बड़ा आदर करते थे। उसकी उच्चता का

ध्यान रखते हुए उसे साम्राज्ञी की उपाधि भी दी गयी थी। भोजन आर्यों के आहार में अन्न, मधु, दूध, दही और घी की प्रधानता थी। अन्न को पीसकर आटे से भोजन या दूध से खीर बनाया जाता था। शकों और फलों का भी उपयोग होता था। पेयों में सबसे अधिक प्रिय सोमरस था। कुछ लोग शराब पीते थे। यद्यपि ऋग्वेद में शराब की निंदा की गयी हैं।

वस्त्र

आर्यों के पहनावे में वास (धोती) और अधिवास (दुपट्‌टा) नामक दो वस्त्र प्रधान थे। वास या वस्त्र का किनारा अति सूंदर था। इस पर फूल और तारों के चित्र भी काढ़े जाते थे। अधिवास के प्रयोग कड़ी के ... भाग ढकने केलिए किया जाता था। धनि लोग स्वर्ण-शिल्पित वस्त्र धारण करते थे। विवाह या नृत्य, उत्सव आदि के अवसर पर रमणीय वस्त्र पहनते थे। पुरुष अपने सर पर पगड़ी धारण की जाती है। अपने शरीर को सुगन्धित रखने केलिए विविध प्रकार के द्रव्यों का प्रयोग किया जाता था। कुछ पुरुष दाढ़ी भी रखते थे। दाढ़ी साफ करने केलिए क्षुर का प्रयोग होता था। लोग आभूषण प्रेमी थे। उस समय सोने या चंडी आभूषण प्रचलित थे। स्त्रियां सर पर जूड़ा बाँधती थी।

मनोरंजन

आर्य लोग नृत्य और संगीत के प्रेमी थे। उस समय में अनेक प्रकार के वाद्यों या बाजों का आविष्कार हो चुका था। रथों का दौड़ उस समय का मनोरंजन था। साथ ही जुआ खेलना, शिकार जैसे अन्य अनेक मनोरंजन की सुविधायें थी। शिकार केलिए धनुष, बाण, जाल आदि साधनों का प्रयोग होता था।

उद्योग तथा व्यापार

आर्यों का प्रमुख व्यवसाय कृषि था। कृषि को पवित्र कार्य माना जाता था। कृषि करते समय इंद्र आदि देवताओं की स्तुति की जाती थी। कभी-कभी एक ही हल में दो से अधिक बैल भी लगाए जाते थे। पशुओं के गोबर खाद के रूप में प्रयोग होता था। विविध प्रकार के अन्न, धन, जों, गेहू, चने, उड़द, तिल, मूंगा, मसूर आदि की खेती भी होती थी। इसके अतिरिक्त कपास की खेती भी है। जाड़े और बरसात में दो फसलें बोई जाती थी। सिंचाई का अच्छा प्रबंध था।

निष्कर्ष रूप में कह सकते है कि 'वेद' ज्ञान का भंडार है। जिसके माध्यम से हमें ज्ञान से सम्बंधित कुछ जानकारियां मिला था। इन चार वेदों की अपनी प्रधानता है। आर्य जब हमारे देश में आया तब यहां वेदों का प्रचलन हुआ। यज्ञादि धर्मों को स्वीकार करके या मंत्रोच्चारण करके हमारी इष्ट देवता को प्रसन्न करते है।

सुन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. प्राचीन भारतीय संस्कृति - डॉ. उषा नागर

२. भारतीय संस्कृति का सम्बन्ध - डॉ. महेंद्रप्रसाद सलारिया

३. संस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह दिनकर